AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

lex% LokLF; e% v"Vkx ;kx dk egÙo

rkjdsÜoj ukFk ik.Ms;] शोधार्थी, योग विभाग,
हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखंड, भारत
M,Œ e%t% ckjk] शोध–निर्देशिका, योग विभाग,
हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखंड, भारत

'kks/k lkj

योग शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में स्वस्थ विकास को न केवल गति प्रदान करता है; बल्कि सकारात्मकता की ओर ले जाकर इहलौकिक जीवन को सार्थक बनाता है। यह विकास के आठ चरणों से युक्त अभ्यास की एक अति–प्राचीन प्रणाली है। 'योग' शब्द संस्कृत के 'युज्' धातु से उत्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है– 'जुड़ना और एकजुट होना।' व्यक्ति शारीरिक–रूप से स्वस्थ होता है तो उसका मन केंद्रित और तनाव मुक्त रहता है। स्व–जनों के साथ जुड़ने और सामाजिक–रूप से स्वस्थ संबंधों को बनाए रखने में यह सहायता प्रदान करता है। जब मनुष्य स्वस्थ होता है तो वह आंतरिक 'स्व' के साथ और दूसरों के परिवेश के साथ बहुत गहरे स्तर पर जुड़ने की कोशिश करता है जिससे धीरे–धीरे वह आध्यात्मिक स्वास्थ्य की तरफ मुड़ने लगता है। यह शरीर, मन, चेतना और आत्मा को संतुलन में लाता है। 'समग्र स्वास्थ्य में अष्टांग योग महत्त्व' का मुख्य लक्ष्य शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक स्वास्थ्य का आत्म–साक्षात्कार अथवा हमारे भीतर ईश्वरीय अनुभूति का साक्षात्कार करना है। इन लक्ष्यों को सभी प्राणियों के लिए प्यार और मदद, जीवन के लिए सम्मान, प्रकृति और पर्यावरण की सुरक्षा, मन की शांतिपूर्ण स्थिति, शुद्ध शाकाहारी भोजन, शुद्ध विचार तथा सकारात्मक जीवन–शैली, शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक प्रथाओं के लिए सहजता से प्राप्त किया जाता है। योग के समस्त विधाओं का प्रयोग न केवल मानव–जीवन के समग्र विकास के लिए है; बल्कि यह समस्त जगत् के चर–अचर जीवों के लिए भी उपयोगी है। कुछ समय पहले यह विधा आम व्यक्तियों के लिए लगभग अबूझ बनी हुई थी; किंतु वर्तमान समय में योग की प्रासंगिकिता और महत्त्व की दिशा में काफी कुछ काम हुआ है। 'पतंजलि' और 'यस व्यासा' जैसे संस्थानों के प्रति लोगों के बढ़ते रुझान एवं सरकारी संरक्षण की वजह से आज योग अपने नए दृष्टिकोण और विजन के साथ हमारे सामने उपस्थित हुआ है।

e[; 'kCn

;e] fu;e] vklu] çk.kk;ke] çR;kgkj] èkkj.kk] è;ku] lekfèk·

çLrkouk

"ॐ सहनाववतु।
सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवाव है।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषाव है।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।"[1]

'योग' उप–चेतना पर काम करता है, जिसका व्यक्ति शरीर पर गुणात्मक प्रभाव पड़ता है। 'अष्टांग योग' के

प्राचीन लेखक महर्षि पतंजलि का जिक्र करते हुए योग को अक्सर 'पतंजलि योग' कहा जाता है। पतंजलि 'योग सूत्र' अष्टांग योग का वर्णन करता है। इस ग्रंथ को इतिहास–लेखन में भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। यह ई०पू० 200 में लिखा गया था लेकिन कुछ विद्वान इस काल के कई सौ वर्ष पूर्व इसकी रचना मानते हैं। 15वीं शताब्दी में 'राजयोग' शब्द को अष्टांग योग के स्थान पर अक्सर प्रयोग किया जाता था, जिसका अर्थ हैः 'राज योग।

महर्षि पतंजलि द्वारा रचित यह ग्रंथ 'योग सूत्र' प्रयोगात्मक सिद्धांतों पर आधारित है। यह योग के परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक साधना–पद्धति है। महर्षि पतंजलि ने 'योग सूत्र' में तीन प्रकार की योग साधनाओं का जिक्र किया है। प्रथम साधना उत्तम कोटि के व्यक्तियों के लिए निर्धारित है जिन्हें केवल अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही समाधि की अवस्था से प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही इस कोटि के साधक 'ईवर प्रणिधान' द्वारा भी समाधि भाव की प्राप्ति कर सकते हैं। महर्षि पतंजलि ने दूसरे अध्याय में मध्यम कोटि के साधकों के लिए 'क्रिया योग' का वर्णन किया है। क्रिया योग का अर्थ बताते हुए उन्होंने कहा है कि– "तप स्वाध्यायेश्वप्रणिधानानि।"[2] अर्थात् तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान की संयुक्त साधना 'क्रिया योग' कहलाती है; जिसका उद्देश्य समाधि भाव को प्राप्त करना व क्लेशों को क्षीण करना है। तृतीय प्रकार की साधना सामान्य कोटि के साधकों के लिए है; जिनका न तो शरीर शुद्ध है और न ही मन। ऐसे साधकों को प्रारंभ से ही साधनारत रहते हुए महर्षि पतंजलि द्वारा प्रस्तुत अष्टांग योग का आश्रय लेना पड़ता है। योग दर्शन को महर्षि पतंजलि ने चार भागों में विभाजित किया है–

01. समाधिपाद
02. साधनपाद
03. विभूतिपाद
04. कैवल्यपाद

'अष्टांग योग' योग दर्शन के साधन–पाद के अंतर्गत आता है; जिसकी बृहद रूप में व्याख्या महर्षि पतंजलि ने योग के आठ अंगों के रूप में की है। उन्होंने 'योग सूत्र' नाम से योग सूत्रों का एक संकलन किया; जिसमें पूर्ण कल्याण हेतु शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शुद्धि के लिए अष्टांग योग (आठ अंगों वाले योग) के मार्ग की व्याख्या की है। अष्टांग योग आठ अलग–अलग चरणों वाला मार्ग नहीं है; अपितु यह आठ आयामों वाला मार्ग है जिसमें आठों आयामों का अभ्यास एक साथ किया जाता है।

'अष्टांग' शब्द दो शब्दों के योग से बना है– अष्ट+अंग, जिसका अर्थ है– आठ अंगों वाला। अतः अष्टांग योग आठ साधनों (साधना/योग–मार्गों) पर बल देता है। इस क्रिया में योगी अथवा साधक शरीर व मन की शुद्धि करके अंततः एकाग्रता के भाव को प्राप्त कर समाधिस्थ हो जाता है।

v"Vkx ;kx dk Hkn

अष्टांग योग में मुख्यतः दो भेदों के अंतर्गत कुल आठ प्रभेदों की व्यापक रूप में चर्चा की गयी है–

(क) cfgjax ;kx

01. यम
02. नियम
03. आसन
04. प्राणायाम
05. प्रत्याहार

(ख) vkarjax lkèku

01. धारणा
02. ध्यान
03. समाधि

(क) cfgjx ;kx%

01. ;e% यम की उत्पत्ति संस्कृत के दो धातु से हुई हैं– यम उप्रमे (ब्रहम में रमन करना) और यम बंधने (सामाजिक बंधन)। त्रिशिख ब्रह्ममणोपनिषद् के 29 वें श्लोक में लिखा गया है– "देह इन्द्रियसु वैराग्यण यम इति उच्य ते बुधै।"[3] अर्थात् यम शरीर और इंद्रियों में वैराग्य की स्थिति है– ऐसा बुद्धिमान लोगों की मान्यता है। "यमयते नियम्यते चित्ति अनेन इति यमः।"[4] चित्ति को नियम पूर्वक चलाना यम कहलाता है। 'पातंजल योग सूत्र' में कुल पाँच प्रकार के यम का वर्णन मिलता है– "अहिंसा सत्यास्तेतय ब्रहमचर्यापरिग्रहा यमाः।"[5] अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रहमचर्य और अपरिग्रह यह पाँच यम हैं। इन्हें योग की भाषा में 'सार्वभौम महाव्रत' के नाम से भी जाना जाता है। इन महाव्रतों को जाति, देश, काल और समय की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता है।

(क) यम के नियमों में पहला उप–नियम है– अहिंसा। अहिंसा के बिना योग की सिद्धि को प्राप्त करना आसान नहीं है। इसके अभ्यास से जब व्यक्ति में परिपक्वता आ जाती है तब स्वतः सभी प्राणियों के प्रति भेद–भाव दूर हो जाता है, अर्थात् जब व्यक्ति अहिंसा का अभ्यास मन, वाणी और शरीर से करता है तो उसे अहिंसा की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। 'याज्ञवल्यकसंहिता' में इसके संदर्भ में कहा गया है कि–

"मनसावाचा कर्मणा सर्वभूतेषू सर्वदा।
अक्लेवश जननं प्रोक्त महिंसात्वेन योगिभि।।"[6]

अर्थात् मन, वचन एवं कर्म द्वारा लोगों को दुःख न पहुँचाने को ही महर्षियों ने अहिंसा कहा है। 'पातंजल योग सूत्र' में अहिंसा के विषय में विवरण मिलता है– "अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सनिधौ वैरत्यागः।।"[7] अर्थात् अहिंसा की पूर्णता की प्राप्ति हो जाने और स्थिरता होने पर साधक के संपर्क में आने वाले सभी प्राणियों की हिंसा बुद्धि दूर हो जाती है।

(ख) अहिंसा के बाद 'सत्य' का नाम आता है। सत्य को धारण करने वाले व्यक्ति के मन, वचन और कर्म में एकरूपता होनी चाहिए। अर्थात् मन ने समझा, आँखों ने देखा और कानों ने सुना वैसा ही कह देना सत्य है। सत्य जितना बाहरी हो उतना ही आंतरिक भी। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में लिखा लिखा गया है कि–

"अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चौव वाङ्मयं तप उच्यते।।"[8]

अर्थात् ऐसे शब्द जो दुःख का कारण नहीं बनते वही सच्चे, अहानिकर तथा हितकारी होते हैं। उसी प्रकार से वैदिक ग्रंथों के नियमित अनुवाचन को वाणी का तप कहा जाता है। वाणी के तप का अर्थ है– उच्चारित किए जाने वाले वे शब्द जो श्रोता के लिए सच्चे, आनंदकारक तथा हितकारी हो। 'मनुस्मृति' में इस संदर्भ में लिखा गया है कि–

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्।
प्रियं च नानृतम् ब्रूयात्, एष धर्मः सनातनः।।"[9]

अर्थात् सत्य को इस प्रकार से कहना चाहिए जिससे दूसरों को प्रसन्नता हो। सत्य को इस प्रकार नहीं बोलना चाहिए जिससे किसी अन्य का अहित हो। कभी भी असत्य नहीं बोलना चाहिए यद्यपि यह आनंददायक ही क्यों न हो। यह नैतिकता और धर्म का शाश्वत् मार्ग है।

'पातंजल योग सूत्र' में सत्य के विषय में वर्णन मिलता है कि– "सत्यप्रतिष्ठ्यां क्रियाफलाश्रयत्वम।"[10] ऐसा व्यक्ति जो कुछ भी बोलता है, वह फलित होने लगता है। अर्थात् वह वाक् सिद्ध हो जाता है।

(ग) vLrs;% दूसरों के विचारों, अधिकारों अथवा वस्तुओं का अपहरण करना चोरी (स्तेय) कहलाता है। ठीक इसके विपरीत अस्तेय है। अर्थात् शरीर, मन और वाणी से किसी दूसरे वस्तु की इच्छा न करना अस्तेय है। 'योग सूत्र' में अस्तेय की सिद्धि के विषय में कहा गया है कि– "अस्तेयप्रतिष्ठा यां सर्वरत्नो प्रस्थानम्।"[11] अर्थात् अस्तेय की दृढ़ स्थिति होने पर व्यक्ति को सभी रत्नों की प्राप्ति होती है।

(घ) cãp;% मन, वचन और कर्म से सभी प्रकार के मैथुनों का परित्याग करना 'ब्रह्मचर्य' है। ब्रह्मचर्य का अर्थ दो रूपों में मिलता है–

(क) चेतना को ब्रह्म के ज्ञान में स्थिर करना।

(ख) सभी इंद्रिय जनित सुखों में संयम बरतना।

ऋषि याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मचर्य के नियमों में बताया है कि–

"कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते।।"[12]

अर्थात् सभी कालों, अवस्थाओं और स्थानों में मनसा, वाचा, कर्मणा यानी मन, वचन और कर्म से मैथुन–भोग से पूर्णतया दूर रहने में सहायता करना ही ब्रह्मचर्यव्रत का लक्ष्य है।

'पातंजल योग सूत्र' में कहा गया है– "ब्रहमचर्यप्रतिष्टा या वीर्यलाभ।"[13] अर्थात् ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा हो जाने पर साधक को वीर्य लाभ की प्राप्ति होती है। मैथुन में प्रवृत्त रहकर योगाभ्यास नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि बचपन में जब मैथुन का कोई ज्ञान नहीं होता है तभी ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाती है। पाँच वर्ष की आयु में बच्चों को गुरुकुल भेजा जाता था जहाँ गुरु उन्हें ब्रह्मचारी बनने के दृढ़ नियमों की शिक्षा देता था। ऐसे अभ्यास के बिना किसी भी योग में उन्नति नहीं की जा सकती। चाहे वह ध्यान हो या कि ज्ञान अथवा भक्ति। किंतु जो व्यक्ति विवाहित जीवन के विधि–विधानों का पालन करता है और अपनी पत्नी से मैथुन–संबंध रखता है, वह भी ब्रह्मचारी कहलाता है। ऐसे संयमशील ब्रह्मचारी को भक्ति संप्रदाय में स्वीकार किया जा सकता है, किंतु ज्ञान तथा ध्यान संप्रदाय वाले ऐसे गृहस्थ–ब्रह्मचारी को प्रवेश नहीं देते हैं। उनके लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य अनिवार्य है।

भक्ति संप्रदाय में गृहस्थ–ब्रह्मचारी को संयमित मैथुन की अनुमति रहती है; क्योंकि भक्ति संप्रदाय इतना शक्तिशाली है कि परमात्मा की सेवा में लगे रहने से वह स्वतः मैथुन का आकर्षण त्याग देता है। प्रत्येक साधक को चाहिए कि उत्तेजक पदार्थों के सेवन, कामोद्दीपक दृश्यों के दर्शन, अश्लील गीतों के श्रवण से बचें और सभी प्रकार से ब्रह्मचर्य की रक्षा करें।

(ङ) vifjxg% आवश्यकता से अधिक संचय नहीं करना चाहिए तथा दूसरों की वस्तुओं की इच्छा नहीं करना ही अपरिग्रह कहलाता है। मनुस्मृति में अपरिग्रह के विषय में लिखा गया है कि–

"इंद्रियाणां पसंगेन दोशमृच्छत्य संशयम।
सन्नियम्यण तु तान्येछव ततः सिद्धिं नियिच्छ्त।।"[14]

अर्थात् इंद्रियों के विषयों में आशक्त होने से व्यक्ति निरूसंदेह दोषी बनता है; परंतु इंद्रियों को वश में रखने से विषयों के भोग से पूर्ण विरक्तं हो जाता है। ऐसे आचरण से अपरिग्रह की सिद्धि होती है।

(2) fu;e% योग के संदर्भ में स्वस्थ जीवन, आध्यात्मिक ज्ञान तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए आवश्यक आदतों एवं क्रिया–कलापों को नियम कहते हैं। 'पातंजल योग पथ' अर्थात् महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग का 'पथ' व 'योग दर्शन' यह एक ऐसा पथ है जिस पर निर्भर होकर दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण सुख, शक्ति व आनंद को प्राप्त कर सकता है। यह कोई अलग धर्म, संप्रदाय, मत या पंथ नहीं है; अपितु जीवन जीने की कला है। इस पथ पर चल कर हर मानव आध्यात्मिक, मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक व शारीरिक उन्नति प्राप्त कर सकता है। योग सूत्र में पाँच व्यक्तिगत उप–नियम के विषय में वर्णन मिलता है– "शौचसन्तोषतपरूस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानि नियमा।"[15]

(क) 'kkp% शरीर और मन की शुद्धि को शौच कहते हैं। शौच का अर्थ है– परिशुद्धि, सफाई और पवित्रता। अर्थात् न खाने वाली वस्तुओं का परित्याग, कु–पात्रों के साथ संगति न करना और मानवीय–धर्मों का पालन करना ही शौच है। शौच मुख्यतः दो है– बाह्य और अभ्यांतर।

01. cká 'kkp% मिट्टी और जल आदि से शरीर की शुद्धि, स्वार्थ त्याग, सही आचरण से मानव व्यवहार की शुद्धि, विद्या व तप से पंचभूतों की शुद्धि और ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि–बाह्य शुद्धि के अंतर्गत आता है।

02. vkrfjd 'kkp% काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष और अहंकार आदि तत्त्वों से दूर रहना ही आतंरिक पवित्रता का परिचायक है। योग सूत्र में इसके संदर्भ में कहा गया है कि– "शौचात्स्वागजुप्सा परैरसंसर्गः।"[16] अर्थात् शौच की स्थिरता होने पर निजी अंगों के प्रति घृणा और परदेह संसर्ग की अनिच्छा उत्पन्न होती है।

(ख) larks"k% अपनी शक्ति, क्षमता, ज्ञान–विज्ञान और सुलभ साधनों की सहायता से किसी के पूर्ण प्रयास से उत्पन्न परिणामों से संतुष्ट होने की स्थिति को 'संतोष' कहा जाता है। 'योग सूत्र' में इसके संदर्भ में कहा गया है कि– "संतोषादनुत्तैमसुखलाभ।"[17] अर्थात् चित्त में संतोष भाव के प्रतिष्ठित हो जाने पर योगी को निश्चय ही सुख यानी आनंद की प्राप्ति हो जाती है।

(ग) ri% अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन करना ही 'तप' कहलाता है। योग सूत्र में इस विषय में कहा गया है कि– "कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयान्तफपस।[18] अर्थात् तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है तब शरीर और इंद्रियों की सिद्धि हो जाती है।

(घ) Loke;k;% इसे 'स्व–अध्ययन' के रूप में भी जाना जाता है। जब कोई व्यक्ति भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान दोनों का अध्ययन करता है तब स्व–अध्ययन की जरुरत पड़ती है। 'योग भाष्य' में महर्षि व्यास ने लिखा है कि– "स्वाध्याययय प्रणव श्रीरूद्रपुरूषसूक्तासदि मन्त्राणां जपमोक्ष्यशास्त्रा ध्यआयभ्चक।।"[19] अर्थात् ओंकार मंत्र का विधि–पूर्वक जप करना रूद्र सूक्त और पुरूष सूक्त आदि वैदिक मंत्रों का अनुष्ठान पूर्व जप करना तथा दर्शनोपनिषद् एवं पुराणादि आध्यात्मिक मोक्ष शास्त्रों का गुरूमुख से श्रवण करना अर्थात् अध्ययन करना ही स्वाध्याय है।

(ङ) bÜoj çf.kèkku% ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है– समर्पण करना (ईश्वर के प्रति तटत्स्थ, अटूट और अडिग विश्वास)। 'योग सूत्र' में ईश्वर प्रणिधान के विषय में लिखा गया है कि– "ईश्वरप्रणिधानाद्वा।"[20] अर्थात् सफलता उन्हें ही उपलब्ध होती है जो ईश्वर के प्रति समर्पित होते हैं।

03. vklu% आसन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'अस्' धातु से हुआ है, जिसका दो अर्थ है– पहला है सीट पर बैठने का स्थान और दूसरा– शारीरिक अवस्था अर्थात् शरीर, मन और आत्मा जब एक स्थिति में होकर स्थिर हो जाते हैं, उससे जो सुख की अनुभूति होती है वह स्थिति 'आसन' कहलाती है। आसन की स्थिति में योगी परब्रह्म का साक्षात्कार करता है। 'योग सूत्र' में कहा गया है कि– "स्थिरसुखमासनम्।"[21] अर्थात् स्थिर और सुख पूर्वक बैठना ही आसन कहलाता है। विधि–पूर्वक लेट कर (पेट एवं पीठ के बल), बैठकर एवं खड़े होकर तीनों व्यवस्थाओं में आसन का अभ्यास किया जाता है। आसन का अभ्यास शारीरिक–क्रियाओं को व्यवस्थित कर वाणी और मन को भी स्थिरता प्रदान करता है। आसन के कई प्रकार हैं–

(01) gkFkk dk 0;k;ke% हाथ की अँगुलिओं से नमन (अँगुली नमन), कलाई का (मणिबंध), कोहनी का, कंधे का (स्कन्ध चक्र), संपूर्ण हाथों का, ग्रीवा (गर्दन) पैरों का व्यायाम, पाद अँगुली नमन, पाद नमन, पाद चक्र, जानू चक्र, जानू नमन, श्रोणी चक्र, अर्ध तितली, पूर्ण तितली।

(02) cSB dj fd;s tkus oky vklu% पद्मासन, वज्रासन, सिद्धासन, मत्स्यासन, वक्रासन, अर्ध–मत्स्येन्द्रासन, पूर्ण मत्स्येन्द्रासन, गोमुखासन, पश्चिमोत्तनासन, जानुशिरासन, मंडूकासन, शशांकासन आदि।

(03) [kM+s gksdj fd;s tkus oky vklu% अर्धचंद्रमासन, वृक्षासन, पाद्पश्चिमोत्तनासन, ताड़ासन, अर्धचक्रासन, चक्रासन, चंद्रनमस्कार, गरुढ़ासन, दो भुज कटिचक्रासन, चंद्रासन, उर्ध्व उत्थान आसन, उत्थान बैठक आसन, अष्टावक्र आसन, मेरुदंड वक्का आसन, बैठक आसन, अंजनेय आसन, त्रिकोणासन, नटराज आसन, पाद संतुलन आसन, एकपाद आकर्षण आसन, उत्कटासन, उत्तानासन, कटी उत्तानासन, एक पाद विराम आसन, हस्तपादांगुष्ठासन, उत्थान जानु आसन, पादांगुष्ठासन, ऊर्ध्वताड़ासन, पादांगुष्ठानासा, स्पर्शासन, कल्याण आसन आदि।

(04) ihB dk cy ysV dj fd;s tkus oky vklu% हलासन, अर्धहलासन, पूर्ण सुप्त वज्रासन, नौकासन, दीर्घ नौकासन, सर्वांगासन शवासन, पवन मुक्तासन, सेतुबंध आसन, उत्तान पादासन, मर्कटासन, पाद चक्रासन आदि।

(05) iVd cy yVdj fd;s tkus okys vklu% मकरासन, भुजंगासन, धनुरासन, शलभासन, विपरीत नौकासन और खग आसन आदि।

(06) vU; vklu% शीर्षासन, मयुरासन, सूर्य नमस्कार, वृश्चिकासन, चंद्र नमस्कार, योगनिद्रा, मार्जरी आसन, अश्व संचालन आसन, भुजपीड़ासन, चक्रासन और व्यघ्रासन आदि।

04. çk.kk;ke% प्राणायाम दो शब्दों के योग से बना है– पहला शब्द 'प्राण' है दूसरा 'आयाम'। 'प्राण' का अर्थ है– जो हमें शक्ति अथवा या बल देता है। 'आयाम' का अर्थ है– जानने के लिए। यह दो शब्दों के योग (आ़याम) से बना है। इसमें मूल शब्द 'याम' है 'आ' उपसर्ग लगा है। 'याम' का अर्थ 'गमन' होता है और 'आ' उपसर्ग 'उलटा' के अर्थ में प्रयोग किया गया है अर्थात् आयाम का अर्थ उलटा गमन होता है। अतः प्राणायाम में आयाम को 'उलटा गमन' के अर्थ में प्रयोग किया गया है। इस प्रकार प्राणायाम का अर्थ 'प्राण का उलटा गमन' होता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्राणायाम प्राण के उलटा गमन के विशेष क्रिया की संज्ञा है न कि उसका परिणाम। अर्थात् प्राणायाम शब्द से प्राण के विशेष क्रिया का बोध होना चाहिये। पतंजलि का 'प्राणायाम सूत्र' महत्त्वपूर्ण माना जाता है जो इस प्रकार है– "तस्मिन् श्वास प्रश्वासयोः गतिविच्छेदः प्राणायामः।।"[22] उसकी (आसनों की) स्थिरता होने पर श्वास–प्रश्वास की स्वाभाविक गति के नियमन करना प्राणायाम है।

çk.kk;ke dk çeq[k çdkj% नाड़ीशोधन, भ्रस्त्रिका, उज्जाई, भ्रामरी, कपालभाती, केवली, कुंभक, दीर्घ, शीतकारी, शीतली, मूर्छा, सूर्यभेदन, चंद्रभेदन, प्रणव, अग्निसार, उद्गीथ, नासाग्र, प्लावनी, शितायु आदि।

05. çR;kgkj% प्रत्याहार दो शब्दों 'प्रति' और 'आहार' से मिलकर बना है। 'प्रति' का अर्थ है– विपरीत। अर्थात् इंद्रियों के जो अपने विषय हैं उनको विषय या आहार के विपरीत कर देना प्रत्याहार है। इंद्रियाँ विषयी हैं। ये विषय को ग्रहण करती हैं। ये विषय हैं– पंच तन्मात्राएँ। प्रत्याहार का अर्थ है– पीछे हटना, उल्टा होना अथवा विषयों से विमुख होना। इसमें इंद्रिय अपने बहिर्मुख विषयों से अलग होकर अंतर्मुख हो जाती हैं।

प्रत्याहार वह गुण है जिसके द्वारा व्यक्ति सफलता के शीर्ष को छू सकता है। यह गुण हमारी आध्यात्मिक–शक्ति को मजबूत करता है। यह चरित्र के परिष्कार का कारक है। एक संयमी बल का एक संयमी व्यक्ति के भीतर संग्रहित किया जाता है। आत्म–नियंत्रण का प्रचार केवल अच्छे विचारों और सत्संगी के साथ संभव है। इसके अलावा प्रत्याहार की अवधारणा में सत्संगती एक भूमिका निभाती है। सज्जनों की संगति में एक सुखद वातावरण और अधिक प्राकृतिक स्वभाव की अपेक्षा की जा सकती है। महर्षि पतंजलि प्रत्याहार के स्वरुप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– "स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।।"[23]

06. èkkj.kk% धारणा मन की एकाग्रता है। एक बिंदु, एक वस्तु या एक स्थान पर मन की सजगता को अविचल बनाए रखने की क्षमता है। चित्त को एक स्थान–विशेष पर केंद्रित करना ही धारणा है। धारणा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'धृ' धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है– आधार, नींव। धारणा अर्थात् ध्यान की नींव, ध्यान की आधारशिला। धारणा परिपक्व होने पर ही ध्यान में प्रवेश मिलता है। महर्षि पतंजलि ने कहा है कि– "देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।।"[24] अर्थात् देश–विशेष में चित्त को स्थिर करना धारणा कहलाता है। स्पष्ट है कि महर्षि ने भी मन को एकाग्र करने की प्रक्रिया को ही धारणा कहा है; जिसमें मन या चित्त को किसी स्थान विशेष में बाँध कर रखने की प्रक्रिया ही धारणा है। यहाँ देश के दो भेद किए गए हैं– बाह्य देश जैसे किसी मूर्ति, सूर्य, चन्द्रमा आदि तथा अंतर देश (शरीर के अंदर के कुछ विशिष्ट स्थान) जैसे– अष्टचक्र आदि। धारणा से संबंधित विभिन्न व्याख्याकारों ने व्याख्या की है। महर्षि व्यास के अनुसार– 'नाभिचक्रे, हृदयपुण्डरीके, मूर्धिन ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाग्रे।' इत्यादि देशों में अथवा बाह्य विषय में वृत्ति मात्र से बंधना और स्थिर करना धारणा कहलाता है।

èkkj.kk dk çdkj% धारणा के प्रकारों का वर्णन विभिन्न ग्रंथों एवं विद्वानों ने अलग–अलग प्रकार से की है। स्वामी निरंजनानंद सरस्वती ने चार प्रकार की धारणा बतायी है। जिनके कई उप–भेद हैं, जो क्रमशः इस प्रकार से हैं–

(क) vkifu"kfnd èkkj.kk% बाह्याकाश, अंतराकाश, चिदाकाश, आज्ञाचक्र धारणा, हृदयाकाश धारणा, दहराकाश धारणा।

(ख) y; èkkj.kk% मूलाधार/विशुद्धि दृष्टि, लोक–दृष्टि।

(ग) 0;ke ipd èkkj.kk% इसमें पाँचों सूक्ष्म आकाशों की अनुभूति अवचेतन तथा उसके परे जगत् की होती है। ये पाँच हैं– आकाश, परमाकाश, महाकाश, तत्वाकाश, सूर्याकाश।

(घ) नादानुसंधान धारणा।

07. è;ku% धारणा की उच्च अवस्था ध्यान है। 'ध्यान' शब्द की उत्पत्ति 'ध्येचित्तायाम्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है– चिंतन करना। लेकिन अष्टांग योग में ध्यान का अर्थ चिंतन करना नहीं है; अपितु चिंतन का एकाग्रीकरण से है। योग सूत्र में इस संदर्भ में कहा गया है कि– "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम।"[25] अर्थात् इस देश में ध्येय विषयक ज्ञान या वृत्ति का लगातार एक जैसा बना रहना ही ध्यान है।

08. lekfèk% 'समाधि' शब्द मूल रूप से 'धा' शब्द से लिया गया है; जिसका अर्थ है– रखना, स्थापित करना, प्रस्तुत करना, छोड़ देना या स्थित। इसी प्रकार 'समाधि' शब्द के अर्थ हैं– एक साथ जोड़ना, संजोना, संघ, समापन, एकाग्रता, ध्यान और समझौता। वैसे आध्यात्मिक–जीवन में 'समाधि' ध्यान की उस स्थिति को कहा जाता है जब ध्यान लगाने वाला व्यक्ति और ध्यान की जाने वाली चीजें दोनों का आपस में विलय होकर एकाकार हो जाते हैं। उनमें कोई भेद नहीं रह जाता। फिर इस चरण में कोई विचार–प्रक्रिया नहीं रह जाती। इसे ध्यान की उच्चतम अवस्था माना जाता है।

'ध्यान' योग की एक ऐसी दशा है जिसमें योगी चरमोत्कर्ष की प्राप्ति कर मोक्ष प्राप्ति की ओर उन्मुख होता है। यह साधना योग साधना का अंतिम लक्ष्य है। योग शास्त्र में समाधि को मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन बताया गया है– "तदेवार्थमात्रनिर्भासंस्वरूपशून्यनमिव समाधि।"[26] अर्थात् जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीती होने लगे और चित्त का निज स्वरूप शून्य–सा हो जाता है तब वह समाधि हो जाता है।

fu"d"kZ

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 'अष्टांग योग' के अभ्यास से साधक शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और आर्थिक स्वास्थ्य की प्राप्ति कर समग्र स्वास्थ्य का वह सु–पात्र बन जाता है। तत्त्वों का विकास होता है। अविद्या के नाश हो जाने से बाह्य शरीर के साथ–साथ अंतःकरण की अपवित्रता का भी क्षय होता है। अष्टांग योग के प्रथम पाँच चरण हमारे भौतिक शरीर को चरमोत्कर्ष तक ले जाते हैं और शेष तीन व्यक्ति को समष्टि में बदल देते हैं। इस प्रकार शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक एकीकरण द्वारा स्थूल से सूक्ष्म की सफल यात्रा कर साधक आत्मा और परमात्मा के बीच के भेद को समाप्त कर पाने में वह अपने आपको सक्षम पाता है।

lanHkZ lwph

01. https://thesimplehelp-com/om&sahana&vavatu&mantra&in&hindi/
02. पातंजलयोगयोगसूत्र, क्रियायोग 2/1
03. ब्रह्ममणोपनिषद्, श्लोक, 23
04. ब्रह्ममणोपनिषद्, श्लोक, 23
05. पातंजल योग सूत्र, 2/30
06. याज्ञवल्यकसंहिता, 2/17
07. पातंजल योगसूत्र, 2/35

08. श्रीमद्भगवद्गीता, 17/15
09. मनुस्मृति, 4/138
10. पातंजल योग सूत्र, 2/36
11. वही, 2/37
12. याज्ञवल्क्य संहिता, 3/23
13. पातंजल योग सूत्र, 2/38
14. मनुस्मृति, 2/13
15. पातंजल योग सूत्र, 2/32
16. वही, 2/40
17. वही, 2/42
18. वही,, 2/43
19. वही, 2/1
20. वही, 1/23
21. वही, 2/46
22. वही, 2/49
23. वही, 2/55
24. वही, 3/1
25. वही, 3/2
26. वही, 3/3

****